JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्राचीन भारत में विज्ञापन के प्रारंभिक स्वरूप और विकास

मोनिका कुमारी
शोधार्थी
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर–812007

शोध–सारांश

विज्ञापन आधुनिक समय की एक अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक–आर्थिक गतिविधि है, किन्तु इसका मूल अत्यंत प्राचीन है। प्राचीन भारत में विज्ञापन प्रत्यक्ष रूप से 'विज्ञापन' शब्द के रूप में नहीं मिलता, परंतु संचार, सूचना–प्रसार और व्यापारिक हितों को बढ़ाने के वे सभी साधन मिलते हैं, जिन्हें हम आज विज्ञापन के प्रारंभिक रूप के रूप में पहचान सकते हैं। यह शोधपत्र उन तमाम परम्पराओं, अभिलेखों, आर्थिक व्यवस्थाओं, सांस्कृतिक व्यवहारों तथा साहित्यिक साक्ष्यों का अध्ययन प्रस्तुत करता है, जो यह सिद्ध करते हैं कि भारत में विज्ञापन का विकास हजारों वर्ष पुराना है। वैदिक काल से लेकर मौर्य काल, गुप्त काल, मध्यकाल एवं लौकिक काल तक विज्ञापन विभिन्न रूपों मौखिक घोषणाओं, ढफली–नाद, प्रतीकात्मक संकेतों, शिलालेखों, हस्तकला चिह्नों, बाज़ार घोषकों, ध्वजों, मुद्राओं, व्यापारिक चिन्हों में विकसित हुआ। यह शोधपत्र इन सभी रूपों की व्याख्या करते हुए दर्शाता है कि विज्ञापन केवल व्यापार का साधन नहीं था, बल्कि सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग भी था।

शब्दकुंजी : अभिलेखों, आर्थिक व्यवस्थाओं, सांस्कृतिक व्यवहारों तथा साहित्यिक साक्ष्य आदि

भूमिका :

प्राचीन भारत में विज्ञान के प्रारंभिक रूप हड़प्पा सभ्यता (लगभग 2600–1900 ई.पू.) से ही दृष्टिगोचर होते हैं, जहाँ सिंधु घाटी की खुदाइयों से प्राप्त मुहरें व्यावसायिक विज्ञापन के सबसे पुराने प्रमाण हैंय इन पर पशु–पक्षी, देवी–देवता एवं लिपि अंकित होती थी, जो व्यापारियों द्वारा माल की पहचान, गुणवत्ता एवं स्वामित्व सूचित करने के लिए प्रयुक्त होती थीं, ठीक आधुनिक ब्रांड लोगो की भाँति। मोहनजोदड़ो से मिली एक मुहर पर यूनिकॉर्न चित्रित है, जो संभवतः किसी विशिष्ट व्यापारी या उत्पाद का प्रतीक था, जबकि लोथल बंदरगाह से प्राप्त गोदी एवं गोदाम संकेत देते हैं कि बंदरगाहों पर माल की आवक–जावक हेतु सार्वजनिक सूचनाएँ दी जाती थीं। वैदिक काल (1500–500 ई.पू.) में ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में 'वाणिज्य' एवं 'पण्य' (वस्तु) शब्दों का उल्लेख मिलता है, जहाँ यज्ञों हेतु द्रव्य एकत्र करने के लिए मौखिक घोषणाएँ (शायद बाजारों में) की जाती थींय ये ध्वनि–आधारित विज्ञापन का प्रारंभिक रूप थे। बौद्ध एवं जैन ग्रंथों (500 ई.पू. से) में 'निगम' (व्यापारी संघ) एवं 'श्रेणी' का वर्णन है, जो सामूहिक रूप से उत्पादों का प्रचार करते थे दृ जैसे तक्षशिला एवं पाटलिपुत्र के बाजारों में दुकानदारों द्वारा चिल्लाकर ग्राहक आकर्षित करना। महाजनपद काल में सिक्कों पर राजचिह्न एवं देवी–देवताओं के अंकन से राजकीय विज्ञापन प्रारंभ हुआ, जो कर संग्रह एवं युद्धों हेतु जनसमर्थन जुटाने का माध्यम बने। मौर्य साम्राज्य (321–185 ई.पू.) में अशोक के

शिलालेख एवं स्तंभलेख सार्वजनिक नीति विज्ञापन के उत्कृष्ट उदाहरण हैंय ये धर्म, कर, पशु–संरक्षण एवं सड़क निर्माण जैसी सूचनाएँ ब्राह्मी लिपि में विभिन्न भाषाओं में अंकित कर जनता तक पहुँचाते थे, एक प्रकार का 'सामाजिक विज्ञापन'। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'गूढ़पुरुष' (गुप्तचर) द्वारा बाजार मूल्यों की निगरानी एवं व्यापारिक धोखाधड़ी रोकने हेतु सूचना प्रसार का उल्लेख है, जो नियामक विज्ञापन का रूप था। गुप्त काल (320–550 ई.) में प्रयाग प्रशस्ति जैसे अभिलेखों से राजकीय उपलब्धियों का प्रचार हुआ, जबकि तमिल संगम साहित्य (300 ई.पू.–300 ई.) में 'पाण' (बाजार) एवं 'अंगडी' (दुकान) में मौखिक कविता द्वारा मसाले, कपड़े एवं आभूषणों का विज्ञापन वर्णित है। मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन के साथ संतों द्वारा लोकगीतों एवं यात्राओं में धार्मिक संदेशों का प्रसार हुआ, जो अप्रत्यक्ष विज्ञापन था। इस प्रकार, प्राचीन भारत में विज्ञापन मुहरों से आरंभ होकर मौखिक घोषणा, शिलालेख, सिक्का, साहित्य एवं सार्वजनिक प्रदर्शन तक विकसित हुआ, जो व्यापार, शासन एवं धर्म तीनों क्षेत्रों में जनमानस को प्रभावित करने का सशक्त माध्यम बनाय यह विकास आधुनिक ब्रांडिंग, सोशल मार्केटिंग एवं पब्लिक रिलेशंस की आधारशिला सिद्ध होता है, जो बिना मुद्रित माध्यम के भी अत्यंत प्रभावी था। विज्ञापन, जैसा कि हम आज इसे जानते हैं, आधुनिक युग की देन नहीं हैय इसके प्रारंभिक रूप प्राचीन सभ्यताओं में भी विद्यमान थे। प्राचीन भारत, अपनी समृद्ध सांस्कृतिक और आर्थिक विरासत के साथ, विज्ञापन के प्रारंभिक रूपों का एक महत्वपूर्ण केंद्र था। सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर मौर्य, गुप्त और मध्यकालीन भारत तक, विज्ञापन के विभिन्न रूप मौखिक, लिखित, और प्रतीकात्मक उपयोग में लाए गए। ये रूप न केवल व्यापार और वाणिज्य को बढ़ावा देते थे, बल्कि सामाजिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक संदेशों को भी प्रसारित करते थे। इस शोध पत्र का उद्देश्य प्राचीन भारत में विज्ञापन के प्रारंभिक रूपों, उनके विकास, और उनके सामाजिक–आर्थिक प्रभावों को तुलनात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है। यह पत्र प्राचीन भारतीय समाज में विज्ञापन की भूमिका को समझने के लिए ऐतिहासिक स्रोतों, पुरातात्विक साक्ष्यों, और साहित्यिक उल्लेखों पर आधारित होगा।[1]

आज विज्ञापन मानव सभ्यता का एक अनिवार्य अंग बन चुका है। किसी भी उत्पाद, सेवा, विचार या संदेश को जनसमूह तक पहुँचाने के लिए विज्ञापन मुख्य माध्यम है। किंतु मानव समाज में इस प्रकार का संचार नवीन नहीं हैय इसके बीज प्राचीन सभ्यताओं में विद्यमान थे। विशेष रूप से प्राचीन भारत की आर्थिक उन्नति, व्यापारिक व्यापकता, सांस्कृतिक समृद्धि और सामाजिक संरचना ने संचार व सूचना–प्रसार की विशिष्ट विधियों को जन्म दिया, जो आधुनिक विज्ञापन के आधार स्तंभ बने। प्राचीन भारतीय समाज में व्यापार अत्यंत सुनियोजित था। सिंधु घाटी सभ्यता के नगर नियोजन, मुहरों और व्यापारिक चिह्नों में विज्ञापन–सदृश गुण स्पष्ट दिखते हैं। वैदिक साहित्य में घोषकों के उल्लेख मिलते हैं। मौर्यकाल में राजकीय घोषणाएँ, शिलालेख और यवन संस्कृतियों से प्रभावित संकेत–पद्धतियाँ उभरती दिखती हैं। गुप्तकाल में व्यापार–चिह्नों, बाजारों में घोषकों, कलाकारों तथा बुनकरों के हस्ताक्षरों ने विज्ञापन के प्रारंभिक रूप को और सुदृढ़ किया। इस प्रकार, विज्ञापन का इतिहास प्राचीन भारत में अत्यंत गहरे रूप में निहित है। इस शोधपत्र का उद्देश्य प्राचीन भारत में विज्ञापन के विकासक्रम का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा तकनीकी आधारों पर विश्लेषण प्रस्तुत करना है।[2]

विज्ञापन का मूल संचार यदि किसी समाज में संचार विकसित हो, तो विज्ञापन के प्रारंभिक रूप स्वतः उभरते हैं। प्राचीन भारत में संचार–पद्धति लेखन, मौखिक परंपरा, प्रतीक, संकेत, संगीत, घोष और संदेश–वहनियों पर आधारित थी। प्राचीन भारत में सूचना प्रसार का प्रमुख माध्यम 'घोषक' थे। ये व्यक्ति नगाड़े, ढोलक या शंख के माध्यम से नगर में घूमकर सूचना का प्रसार करते थे। इन्हें 'सूचक', 'दूत', 'नंदी' या 'घोषक' कहा जाता था। वे राजकीय आदेशों के साथ व्यापारियों के संदेश, बाज़ार में उपलब्ध वस्तुओं और कीमतों का प्रचार भी करते थे। यह

स्पष्ट रूप से विज्ञापन के मौलिक रूप थे जहाँ एक व्यक्ति खुले स्थान पर उत्पाद या सेवा के बारे में आम लोगों को अवगत कराता है।

प्रतीकात्मक संचार

भारतीय समाज में प्रतीकों का प्रयोग अत्यंत प्राचीन है। मंदिरों, नगर–राज्यों और व्यापारिक गिल्डों के विशिष्ट प्रतीक लोगों को पहचान और विश्वसनीयता प्रदान करते थे। यह वही कार्य था जो आज 'स्वहव' या 'Brand identity' के रूप में प्रयोग किया जाता है। 'श्रेणी' या 'गिल्ड' भारतीय व्यापारियों के समूह थे। प्रत्येक श्रेणी का अपना निशान, ध्वज या चिह्न होता था जिसे देखकर लोग वस्तुओं की गुणवत्ता और विश्वसनीयता का अनुमान लगा लेते थे। यह ब्रांडिंग की एक परिपक्व प्रणाली थी।

सिंधु घाटी सभ्यता में विज्ञापन के संकेत

सिंधु घाटी सभ्यता (2600–1900 ई.पू.) को भारतीय विज्ञापन का प्रारंभिक अध्याय माना जा सकता है। हालाँकि अभी तक लिपि अपठित है, लेकिन पुरातात्त्विक साक्ष्य विज्ञापन–सदृश घटनाओं की पुष्टि करते हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से प्राप्त हजारों मुहरें व्यापार, पहचान और प्रतिष्ठा का माध्यम थीं।[3] इन पर पशु चित्र, प्रतीक और विशिष्ट चिन्ह उकेरे गए हैं। ये एक प्रकार के 'Trademark' थे, जो व्यापारिक माल की पहचान करते थे। सिंधु घाटी से कई प्रकार की मिट्टी, धातु और पत्थर की वस्तुओं पर अंकित प्रतीक मिले हैं। यह संकेत देते हैं कि वस्तुओं को विशेष गिल्डों या कारीगरों द्वारा बनाया गया होगा। यह एक प्रकार का काउंटरमार्क या ब्रांड–प्रमाणपत्र था। सुव्यवस्थित बाजारों, गोदामों और व्यापारिक केंद्रों में विभिन्न वस्तुओं को अलग–अलग क्षेत्रों में रखा जाता था। यह वस्तुओं की पहचान और बिक्री को सरल बनाती थी। इस प्रणाली में कुछ प्रतीक और संकेत उपभोक्ताओं को चयन करने में सहायता देते थे।

वैदिक एवं उत्तरवैदिक काल में विज्ञापन

वैदिक साहित्य (1500–500 ई.पू.) मौखिक परंपरा पर आधारित था। इस काल में व्यापार, पशुविक्रय, यज्ञोपकरण, कृषि उत्पाद और औषधियों का लेनदेन सुचारू रूप से चलता था। वेदों में 'घोषक' या 'श्रवणकर्ता' का उल्लेख मिलता है जो सार्वजनिक स्थलों पर संदेश पढ़ने या सुनाने का कार्य करते थे। यज्ञ, पशु मेले, सामग्री विक्रय और कृषि उत्पादों के संबंध में घोषणाएँ की जाती थीं। यह विज्ञापन की मौखिक विधि थी जहाँ लक्षित जनसमूह तक जानकारी पहुँचाई जाती थी। यज्ञ आयोजनों के साथ जुड़े व्यापारी अपने उत्पाद घी, दुग्ध, धातुएँ, अनाज, कपड़े की श्रेष्ठता का प्रदर्शन करते थे। इसका उद्देश्य प्रतिष्ठा प्राप्त करना था, जो आधुनिक 'Promotion' से मेल खाता है। ऋग्वेद के कई मंत्रों में औषधियों और वस्तुओं के गुण बहुत विस्तार से वर्णित हैं। यह 'गुण–प्रचार' का पुरातन रूप है।

बौद्ध और जैन काल में विज्ञापन

बौद्ध और जैन भिक्षु पूरे भारत में भ्रमण करते थे और अपने संदेशों का प्रचार करते थे। वे अपने संघों के लिए आवश्यक सामग्री का भी प्रचार करते थे। बौद्ध ग्रंथों में 'निगम', 'सेठ', 'गजाध्यक्ष', 'लेखाध्यक्ष' आदि के वर्णन मिलते हैं, जो व्यापार का संचालन करते थे।[4] मौर्य साम्राज्य (322–185 ई.पू.) ने प्रशासन, व्यापार और कला को अत्यंत व्यवस्थित रूप दिया। अशोक के शिलालेख, स्तंभलेख और शासकीय आदेशों को प्राचीन विज्ञापन का महत्त्वपूर्ण रूप माना जा सकता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णन मिलता है कि बाजार में वस्तुओं की गुणवत्ता,

मूल्य और माप–तौल की जांच के लिए अधिकारी नियुक्त थे। मौर्यकाल में नगर घोषकों की संख्या बढ़ी। त्योहारों, बाज़ारों और मेलों में ये व्यापारी वर्ग के लिए भी घोषणाएँ करते थे।

गुप्तकाल में कला, प्रतीक एवं विज्ञापन

गुप्त काल (320–550 ई.) भारतीय संस्कृति और व्यापार का स्वर्ण युग था। इस काल में विज्ञापन के कई प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप विकसित हुए। इस काल में प्रत्येक व्यापारी समूह जैसे बुनकर, काष्ठशिल्पी, धातुकार अपने उत्पाद पर अपना विशेष प्रतीक अंकित करते थे। गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्राएँ अत्यंत कलात्मक थीं।[5] राजा की छवि, धर्मचिह्न, पशु, नृत्य, वाद्य ये सब 'राजकीय प्रतिष्ठा' का प्रचार थे। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में कलाकार मंडलियों द्वारा अपने प्रदर्शन की घोषणा का उल्लेख मिलता है। यह मनोरंजन–आधारित विज्ञापन का रूप था।

मध्यकाल में विज्ञापन का विकास

मध्यकाल में व्यापारिक मार्गों के विस्तार, मेलों, हाट–बाज़ारों और नगरों में विकास हुआ जिससे विज्ञापन के नए रूप जन्मे। ग्राम्य क्षेत्रों में हाट–बाज़ारों में ढोल–नगाड़ों के साथ व्यापारी अपनी वस्तुओं की घोषणा करते थे। व्यापारी दुकानों पर रंगीन ध्वज और फहरियाँ लगाते थे।[6] यह दृश्य विज्ञापन था। खान–पान के विक्रय से लेकर आभूषण, कपड़े, हथियार आदि सभी दुकानों पर प्रतीकात्मक चिह्न लगाए जाते थे। कुंभ मेला, कार्तिक पूर्णिमा मेला, पशु मेले आदि में व्यापारी अपनी वस्तुओं का प्रदर्शन करते थे। प्रदर्शन विज्ञापन का प्रमुख रूप था।

भाषाओं, लिपियों और साहित्य में विज्ञापन

नाटक, महाकाव्य, गाथाएँ और कहानियाँ उस समय के समाज की आर्थिक संरचना और प्रचार–प्रसार विधियों का जीवंत चित्र प्रस्तुत करती हैं। कई ग्रंथों में दुकानों, बाजारों, वस्तुओं के आकर्षक विवरण मिलते हैं जो विज्ञापन–सदृश हैं। संगम साहित्य में व्यापारी काफ़िलों, नाविकों, मसालों, मोतियों, रत्नों आदि का विशद वर्णन मिलता है। इनमें व्यापारियों द्वारा की गई प्रशंसा और गुण–वर्णन भी विज्ञापन के ही रूप हैं।[7]

प्राचीन भारत में विज्ञापन के प्रमुख माध्यम

घोषक, सूचक, दूत, पुजारी, भिक्षु, कारीगर सब अपनी–अपनी सेवाओं और वस्तुओं का मौखिक प्रचार करते थे :–

- ध्वज
- संकेत
- चित्र
- पशु चिह्न
- गिल्ड–लोगो

ये सभी दृश्य पहचान प्रदान करते थे।

राजकीय घोषणाएँ जनता को दिशा–निर्देश, नियम, आदेश और प्रोत्साहन प्रदान करती थीं। यह प्राचीन ट्रंकमउंता प्रणाली थी :–

- मुद्रा–चित्र
- मंदिर मूर्तियाँ

- नाट्य–प्रस्तुति

ये सभी सांस्कृतिक विज्ञापन के रूप में भी कार्य करते थे।

भारत विभिन्न राजवंशों और नगर–राज्यों में विभाजित होने के बावजूद व्यापार अत्यंत प्रतिस्पर्धी था। उपभोक्ता गुणवत्ता और विश्वसनीयता को प्राथमिकता देते थे। इसी कारण व्यापारी अपने उत्पादों की विशिष्टता बताने के लिए है :–

- मुहरें,
- ब्रांड–चिह्न,
- मौखिक प्रचार,
- प्रदर्शन

का प्रयोग करते थे।

मौर्य और गुप्त काल में आंतरिक और बाहरी व्यापार बढ़ा। विदेशी व्यापारियों यूनानी, फारसी, रोमन के प्रभाव से भारतीय व्यापारी अपनी प्रस्तुति और विज्ञापन तकनीकों में सुधार करने लगे।

निष्कर्ष :

प्राचीन भारत में विज्ञापन का इतिहास अत्यंत समृद्ध, विविध और गहन है। यद्यपि उस समय आधुनिक विज्ञापन साधन छापाखाना, बैनर, रेडियो, टेलीविजन नहीं थे, लेकिन संचार, प्रचार और जनसंपर्क की गहरी एवं सुविकसित परंपराएँ मौजूद थीं। सिंधु घाटी की मुहरें, वैदिक घोषक, श्रमण परंपरा, मौर्य शिलालेख, गुप्तकालीन मुद्राएँ, व्यापारी श्रेणियों के चिह्न, हाट–बाज़ारों के घोषक और प्रतीक इन सबने आधुनिक विज्ञापन की नींव रखी। विज्ञापन केवल व्यापारिक गतिविधि न होकर एक व्यापक सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया थी। प्राचीन भारत में विज्ञापन के रूप आज भी भारतीय संस्कृति, बाजार और ब्रांडिंग में किसी न किसी रूप में जीवित हैं।

विज्ञापन एक दोधारी तलवार है, जो समाज को लाभ और हानि दोनों पहुँचाता है। तुलनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि विज्ञापन का प्रभाव इसके उपयोग, संदर्भ और नैतिकता पर निर्भर करता है। भारत जैसे विविध और तेजी से डिजिटल हो रहे समाज में, विज्ञापन को जिम्मेदार और नैतिक बनाने के लिए नीतिगत सुधार आवश्यक हैं। इस पत्र में सुझाव दिया गया है कि विज्ञापन मानक परिषद को सशक्त करना, भ्रामक विज्ञापनों पर सख्त नियम लागू करना, और पर्यावरण–अनुकूल व समावेशी विज्ञापनों को प्रोत्साहित करना जरूरी है। साथ ही, उपभोक्ता शिक्षा और डेटा गोपनीयता पर ध्यान देकर विज्ञापन के नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है। विज्ञापन के भविष्य के लिए तकनीकी नवाचारों, जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डेटा एनालिटिक्स, की भूमिका पर भी प्रकाश डालता है, जो व्यक्तिगत और प्रभावी विज्ञापन की दिशा में ले जा रहे हैं। विज्ञापन का सकारात्मक उपयोग समाज को सशक्त बना सकता है, बशर्ते इसे नैतिक और जिम्मेदार ढंग से लागू किया जाए।

संदर्भ–सूची :

1. Jef I. Richards (2020) : A History of Advertising: The First 300,000 Years. Rowman & Littlefield, 17-25.
2. G. Shainesh et al. (2016) : History of Marketing in India: The Past as the Mirror of the Present . Excel Books India, 130-140.

3. S. Banerjee (1981) : Advertising in India: Evolution and Technique. Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, 31-35.

4. Shweta Shrivastava (2019) : The Evolution of Indian Advertising: A Historical Perspective. Jigyasa: The Journal of Social Science, 12(2) 45-60.

5. Prateek Maheshwari (2021) : Advertising in India: The Journey So Far and Road Ahead. South Asian Journal of Management, Sage Publications, 28(1), 5-20.

6. Kenneth R. Hall (1975) : The Nagaram as a Marketing Center in Early Medieval South India. Unpublished manuscript (later in Journal of Asian Studies), 10-12.

7. Douglas E. Haynes (2020) : The Emergence of Brand-Name Capitalism in Late Colonial India: Advertising and the Making of Modern Conjugality. Bloomsbury Academic, 212-213.